॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सामवेदीय

वासुदेवोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

गोपीचन्दनका महत्त्व, उसके धारणकी विधि और फल

देवर्षि नारदने सर्वेश्वर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करके उनसे पूछा—भगवन्! द्रव्य, मन्त्र, स्थान आदि (देवता, रेखा, रंग एवं परिमाण)-के साथ मुझे ऊर्ध्वपुण्ड्रकी विधि बतलाइये।

तब देवर्षि नारदसे भगवान् वासुदेव बोले—'जिसे ब्रह्मादि मेरे भक्त धारण करते हैं, वह वैकुण्ठधाममें उत्पन्न, मुझे प्रसन्न करनेवाला विष्णुचन्दन मैंने वैकुण्ठधामसे लाकर द्वारकामें प्रतिष्ठित किया है। कुङ्कुमादिसहित विष्णुचन्दन ही चन्दन है। मेरे अङ्गोंमें वह चन्दन गोपियोंद्वारा उपलेपित और प्रक्षालित होनेसे गोपीचन्दन कहा जाता है। मेरे अङ्गका वह पवित्र उपलेपन चक्रतीर्थमें स्थित है। चक्र (गोमतीचक्र)-सहित तथा पीले रंगका वह मुक्ति देनेवाला है। [चक्रतीर्थमें जहाँ गोमतीचक्रशिला हो, उस शिलासे लगा पीला चन्दन ही गोपीचन्दन है। शिलासे पृथक् तथा दूसरे रंगका नहीं।]'

पहले गोपीचन्दनको नमस्कार करके उठा ले, फिर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

गोपीचन्दन पापघ्न विष्णुदेहसमुद्भव।
चक्राङ्कित नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव॥

'हे विष्णुभगवान्‌के देहसे समुत्पन्न पापनाशक गोपीचन्दन! हे चक्राङ्कित! आपको नमस्कार है। धारण करनेसे मेरे लिये मुक्ति देनेवाले होइये।'

इस प्रकार प्रार्थना करके '**इमं मे गङ्गे०**'[1] इस मन्त्रसे जल लेकर '**विष्णोर्नु कम्०**'[2] इस मन्त्रसे (उस चन्दनको) रगड़े।

फिर '**अतो देवा अवन्तु नो०**'[3] आदि ऋग्वेदके मन्त्रोंसे तथा विष्णुगायत्री[4]से तीन बार अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर—

---

१. 'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥'
(ऋक्० १०।७५।५)

इस मन्त्रके सिन्धुद्वीप ऋषि हैं, मन्त्रोक्त सब नदियाँ देवता हैं, जगती छन्द है, जलदानमें इसका विनियोग है।' इन ऋषि आदिका न्यास करना चाहिये।

२. 'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥'
(ऋक्० १।१५४।१)

इस मन्त्रका 'विष्णोर्नु कमिति मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिः नारायणो देवता त्रिष्टुप् छन्दः मर्दने विनियोगः।' इस प्रकार विनियोग है। इन ऋषि आदिका न्यास करना चाहिये।

३. 'अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः॥'
'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥'
(ऋक्० १।२२।१६, २०-२१)

इन तीनों मन्त्रोंको पढ़े। इनका विनियोग वाक्य यह है—'अतो देवा इति त्र्यृचस्य काण्वो मेधातिथि ऋषिः विष्णुः देवता गायत्री छन्दः अभिमन्त्रणे विनियोगः।' पूर्ववत् न्यास करे।

४. (विष्णुगायत्री)—नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

शङ्खचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत।
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष मां पाहि शरणागतम्॥

'हाथोंमें शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किये, द्वारकाधाममें रहनेवाले हे अच्युत! हे कमललोचन गोविन्द! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो।'

इस प्रकार मेरा ध्यान करके गृहस्थ अनामिका अँगुलीद्वारा ललाट आदि (ललाट, उदर, हृदय, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, दोनों कुक्षि, कान, पीठका (पेटके पीछेका) भाग, गर्दनके पीछे तथा मस्तक—इन) बारह स्थानोंपर विष्णुगायत्रीसे अथवा केशव आदि बारह नामोंसे[1] (चन्दन) धारण करे। ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ (अनामिकासे ही) ललाट, कण्ठ, हृदय तथा बाहुमूल (कन्धोंके पास बाहुके कूल्हों)-पर विष्णुगायत्रीके द्वारा अथवा कृष्णादि पाँच नामोंसे[2] (चन्दन) धारण करे। संन्यासी तर्जनी अँगुलीसे सिर, ललाट तथा हृदयपर प्रणवके द्वारा (चन्दन) धारण करे।

ब्रह्मादि (ब्रह्मा, विष्णु, शिव), तीनों मूर्तियाँ, तीनों (भूः भुवः स्वः) व्याहृतियाँ, तीन (गण-छन्द, मात्रा-छन्द तथा अक्षर-छन्द) छन्द, तीनों (ऋक्, यजुः एवं साम) वेद, तीनों (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत) स्वर, तीनों (आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि) अग्नियाँ, तीनों (चन्द्र, सूर्य, अग्नि) ज्योतिष्मान्, तीनों (भूत, वर्तमान, भविष्य) काल, तीनों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) अवस्थाएँ, तीनों (क्षर, अक्षर, परमात्मा) आत्मा, तीनों पुण्ड्र (अकार, उकार, मकार—प्रणवकी ये तीन मात्राएँ)—ये सब प्रणवात्मक तीनों ऊर्ध्वपुण्ड्रके स्वरूप हैं। अतः ये तीन रेखाएँ एकत्रित होकर ॐके रूपमें एक हो जाती हैं (अर्थात् तीनों पुण्ड्र मिलकर प्रणवरूप होते हैं) अथवा परमहंस प्रणवद्वारा एक ही ऊर्ध्वपुण्ड्र ललाटपर धारण करे। वहाँ (ललाटमें) दीपके प्रकाशके समान अपने आत्माको देखता हुआ तथा 'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसी भावना करता हुआ योगी मेरा सायुज्य (मोक्ष) प्राप्त करता है और दूसरे (परमहंसके अतिरिक्त) कुटीचक, त्रिदण्डी, बहूदक आदि संन्यासी हृदयपरके ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्यमें या हृदयकमलके मध्यमें अपने आत्मतत्त्वकी भावना (ध्यान) करे।

उस हृदयकमलके मध्यमें नीले बादलके मध्यमें प्रकाशमान विद्युल्लताकी भाँति अत्यन्त सूक्ष्म ऊर्ध्वमुखी अग्निशिखा स्थित है। वह नीवारके शूक (सिक्के—कोंपलमूल)-की भाँति पतली, पीतवर्ण तथा प्रकाशमय अणुके समान है। उसी अग्निशिखाके मध्यमें परमात्मा स्थित हैं। पहले हृदयके ऊपरके ऊर्ध्वपुण्ड्रमें (अग्निशिखाके मध्य परमात्माकी भावनाका) अभ्यास करे। उसके पश्चात् हृदय-कमलमें (उसी ध्यानका) अभ्यास करे। इस प्रकार क्रमशः अपने आत्मरूपकी मुझ परम हरिरूपसे भावना करे।

जो एकाग्र मनसे मुझ अद्वैतरूप (जिसके अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं, उस) हरिका हृदयकमलमें अपने आत्मरूपसे ध्यान करता है, वह मुक्त है; इसमें सन्देह नहीं। अथवा जो भक्तिद्वारा मेरे अव्यय, ब्रह्म (व्यापक), आदि-मध्य एवं अन्तसे रहित, स्वयंप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपको जानता है (वह भी मुक्त है, इसमें सन्देह नहीं)।

मैं एक ही विष्णु अनेक रूपवाले जङ्गमों तथा स्थावर भूतोंमें भी ओतप्रोत होकर उनके आत्मरूपसे निवास करता हूँ। जैसे तिलोंमें तेल, लकड़ीमें अग्नि,

---

१. ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे। माधवं हृदये न्यस्य गोविन्दं कण्ठकूपके॥
विष्णुश्च दक्षिणे कुक्षौ तद्भुजे मधुसूदनम्। त्रिविक्रमं कर्णदेशे वामे कुक्षौ तु वामनम्॥
श्रीधरं तु सदा न्यसेद् वामबाहौ नरः सदा। पद्मनाभं पृष्ठदेशे ककुद्दामोदरं स्मरेत्॥
वासुदेवं स्मरेन्मूर्ध्नि तिलकं कारयेत् क्रमात्।

ललाटमें केशव, उदरमें नारायण, हृदयमें माधव, कण्ठकूपमें गोविन्द, दाहिनी कुक्षिमें विष्णु, दाहिनी भुजामें मधुसूदन, कानोंमें त्रिविक्रम, बायीं कुक्षिमें वामन, वामबाहुमें श्रीधर, पीठमें पद्मनाभ, ककुत् (गर्दनके पीछे)-में दामोदर, मस्तकपर वासुदेव—इस प्रकार भगवन्नामका न्यास करते हुए तिलक करे।

२. 'कृष्णः सत्यः सात्वतः स्याच्छौरिः शूरो जनार्दनः।'

अथवा—

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च। नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

कृष्ण, सत्य, सात्वत, शौरि एवं जनार्दन अथवा कृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्दगोपकुमार और गोविन्द—इन नामोंसे तिलक करे।

दूधमें घी तथा पुष्पमें गन्ध (व्याप्त है), वैसे ही भूतोंमें उनके आत्मरूपसे मैं अवस्थित हूँ। जगत्‌में जो कुछ भी दिखायी पड़ता है अथवा सुना भी जाता है, उस सबको बाहर और भीतरसे भी व्याप्त करके मैं नारायण स्थित हूँ। मैं देहादिसे रहित, सूक्ष्म, चित्प्रकाश (ज्ञानस्वरूप), निर्मल, सबमें ओतप्रोत, अद्वैत परम ब्रह्मस्वरूप हूँ।

ब्रह्मरन्ध्रमें, दोनों भौंहोंके मध्यमें तथा हृदयमें चेतनाको प्रकाशित करनेवाले श्रीहरिका चिन्तन करे। इन स्थानोंको गोपीचन्दनसे उपलिप्त करके (वहाँ गोपीचन्दनका तिलक करके) तथा ध्यान करके साधक परमतत्त्वको प्राप्त करता है। ऊर्ध्वदण्डी, ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी), ऊर्ध्वपुण्ड्र (धारी) तथा ऊर्ध्वयोग (उत्तम गति देनेवाले योग)-को जाननेवाला—इस ऊर्ध्व-चतुष्टयसे सम्पन्न संन्यासी ऊर्ध्वपद (दिव्यधाम)-को प्राप्त करता है।

इस प्रकार यह निश्चित ज्ञान है। यह मेरी भक्तिसे स्वयं सिद्ध हो जाता है। नित्य गोपीचन्दन धारण करनेसे एकाग्र भक्ति प्राप्त होती है। वैदिक ज्ञानसम्पन्न सर्वश्रेष्ठ सभी ब्राह्मणोंके लिये पानीके साथ घिसकर गोपीचन्दनके ऊर्ध्वपुण्ड्र (करने)-का विधान है। जो मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा रखनेवाला) है, वह अपरोक्ष आत्मदर्शनकी सिद्धिके लिये गोपीचन्दनके अभावमें (गोपीचन्दन न हो, तब) तुलसीके जड़की मिट्टी (-से) नित्य (तिलक) धारण करे। जिसका शरीर गोपीचन्दनसे लिप्त रहता है, उसके शरीरकी हड्डियाँ निश्चय ही (दधीचिकी हड्डियोंके समान) दिनोदिन चक्र (वज्रके समान सुदृढ़) होती जाती हैं।

(दिनमें तो गोपीचन्दनका ऊर्ध्वपुण्ड्र करे) और रात्रिको अग्निहोत्रकी भस्मसे '**अग्नेर्भस्मासि०**'[१] आदिसे (भस्म लेकर) '**इदं विष्णु०**'[२] आदि मन्त्रसे मलकर तथा '**त्रीणि पदा०**'[३] आदि मन्त्रसे, विष्णुगायत्रीसे तथा (यदि साधु हो तो) प्रणवसे उद्धूलन करे (सम्पूर्ण शरीरको मले)।

जो इस विधिसे गोपीचन्दन धारण करता है अथवा जो इस (उपनिषद्)-का अध्ययन करता है, वह समस्त महापातकोंसे पवित्र हो जाता है। उसे पाप-बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुकता है। (सब तीर्थोंके स्नानका पुण्य प्राप्त कर लेता है।) सम्पूर्ण यज्ञोंका यजन करनेवाला (उनके यजनके फलको प्राप्त) होता है। सम्पूर्ण देवताओंसे पूजनीय हो जाता है। उसकी मुझ नारायणमें अचला भक्ति वृद्धिको प्राप्त होती है। वह सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके भगवान् विष्णुका सायुज्य (मोक्ष) प्राप्त करता है। फिर (संसारमें) लौटकर नहीं आता, नहीं आता।

आकाशमें व्याप्त हुए सूर्यकी भाँति भगवान् विष्णुके उस परमपदको सूक्ष्मदर्शी (ज्ञानी) सदा अपने हृदयाकाशमें देखते (साक्षात् करते) हैं। भगवान् विष्णुका वह जो परम पद है, उसे लोक-व्यवहारमें अनासक्त एवं साधनके लिये सदा जाग्रत् रहनेवाले विप्रगण ध्यानमें प्रकाशित करते हैं। (ध्यानमें उसका साक्षात् दर्शन करते हैं।)

॥ सामवेदीय वासुदेवोपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

१-'अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चितः स्थ परिचित ऊद्‌र्ध्वचितः श्रयद्‌ध्वम्।' (वाजसनेयिसंहिता १२। ४६)

२-'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे॥' (ऋक्० १। २२। १७)

३-'त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥' (ऋक्० १। २२। १८)